पूर्वांचल
और
श्री गुरुजी

संकलक
श्री मधुकर लिमये

प्राक्कथन

भारत के उत्तर पूर्वांचल (असम-क्षेत्र) की परिस्थिति सभी दृष्टि से कठिन एवं विविधताओं से परिपूर्ण है। सैकड़ों जातियों एवं जनजातियों वाले इस क्षेत्र को आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व ईसाई मिशनरीज ने अपना सघन कार्य क्षेत्र बनाया। विविध प्रकार के हथकण्डे अपनाकर इन जनजातियों को विशाल हिन्दू समाज से दूर कर उनको ईसाई बनाकर उनके मन में अलगाववाद पैदा करना ही उनका उद्देश्य रहा। अपने इन निहितार्थों की पूर्ति हेतु उन्होंने अनेक उग्रवादी संगठनों को प्रशिक्षित कर इस कार्य में लगाया हुआ है। इन परिस्थितियों में भी वहाँ पर कार्य कर रहे अपने कार्यकर्त्ताओं के मध्य पू० गुरुजी प्रतिवर्ष दो बार जाकर वार्ता करते हुए मार्गदर्शन करते रहे। इतने दीर्घकाल के उनके प्रवास के अवसरों पर सैकड़ों मार्गदर्शक प्रसंग आना भी स्वाभाविक था। २००६ का यह वर्ष संघ के इतिहास में एक विशिष्ट वर्ष है। इस वर्ष देशभर के स्वयंसेवक एवं संघ-प्रेमी जनता विविध उपक्रमों से पूजनीय गुरुजी का जीवन संदेश देश के कोने-कोने में फैलायेगी। अतः इस अवसर पर यह आवश्यक लगता है कि देश के स्वयंसेवकों को भी उन प्रसंगों की जानकारी हो जिनके सम्बन्ध में पू० गुरुजी ने उन कठिन परिस्थितियों में अचूक मार्गदर्शन करते हुए न केवल संघ के कार्यकर्ताओं को वरन् सम्पूर्ण हिन्दू समाज को योग्य दिशा दी।

यद्यपि १९४६ के दिसंबर में असम में संघ कार्य की नींव स्व. दादाराव परमार्थ जी ने रखी थी, तो भी १९४८ में गाँधी जी की हत्या के झूठे आरोप में संघ पर प्रतिबंध, और फिर इसके विरोध में संघ सत्याग्रह, इसमें ही सारा वर्ष बीता। १९४९ के १२ जुलाई को सरकार द्वारा प्रतिबंध बिना शर्त हटाये जाने के बाद वह वर्ष संघ कार्य की पुनः रचना और पू. गुरुजी के देश भर के प्रवास में भव्य स्वागत के कार्यक्रम आदि में बीत गया। इसलिये असम में पू० गुरुजी का सर्वप्रथम आगमन १९५० के फरवरी में हुआ। उस समय तक असम की जनता संघ और श्री गुरुजी के बारे में कुछ भ्रांत धारणाएँ छोड़कर कुछ भी नहीं जानती थी।

१९५० से १९७३ तक २३ वर्षों में पू. गुरुजी का असम भ्रमण, १९६० तक प्रतिवर्ष एक बार और १९६१ से संघ शिक्षा वर्ग असम में शुरू होने के पश्चात् प्रतिवर्ष दो बार ऐसे लगभग ३३ बार हुआ। इस प्राचीन स्मृति का उद्देश्य कुछ विशेष घटनाओं का विवरण और समय-समय पर स्वयंसेवकों का और नागरिकों के लिये मार्गदर्शन का संकलन करना मात्र है। इस कार्य में सहायता करने वाले स्वयंसेवकों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

असम प्रदेश के स्वयंसेवकों में से अनेक स्वयंसेवकों का पूजनीय श्री गुरूजी के साथ पत्र-व्यवहार रहा, स्वयंसेवकों को संस्कारित कर कार्य प्रवण करने के लिए श्री गुरुजी ने पत्र-व्यवहार का भी कुशलता से उपयोग किया है। ऐसे कुछ पत्रों का अंश भी 'पत्र द्वारा प्रेरणा' प्रकरण में दिया है।

प० पू० श्री गुरुजी का किसी भी समस्या के बारे में विवेचन दो प्रकार से रहता था। एक तो जो भी समस्या होती थी उसका स्थानीय परिस्थित्यानुरूप उचित मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं को होता था तो दूसरा देश भर के हिंदू समाज को समस्या के बारे में भाषण और व्यक्तिगत वार्तालाप में सम्यक् ज्ञान देना होता था। इन संस्मरणों में दोनों प्रकार का उपयोग किया है।

मार्गदर्शन

१९५० में जब श्री गुरुजी प्रथम बार आसाम में आये तब वे गुवाहाटी, शिलांग और डिब्रुगढ़ गये थे। तीनों स्थान पर स्वयंसेवकों की बैठक में उन्होंने कहा- 'सरकारी प्रतिबंध के फलस्वरूप गये अठारह मास शाखाएँ बंद रहीं इससे बहुत हानि हुई है इसमें संदेह नहीं। वह क्षति पूर्ण करने के लिए प्रामाणिकता, दक्षता

और अनुशासन पूर्वक अपना कार्य द्रुत-गति से बढ़ाने तथा संघ कार्य का प्रांत भर में विस्तार करना यह अब कार्यकर्ताओं का कर्तव्य बनता है। गये अठारह मास में संघ के बारे में जो अपप्रचार हुआ है उसे अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से और कर्तव्य दक्षता से झूठ प्रमाणित करना चाहिए।'

संघ के प्रत्येक प्रचारक को श्री गुरुजी को मास में एक पत्र लिखना ही चाहिए, ऐसा उनका आग्रह रहता था। एक बार डिब्रुगढ़ विभाग के प्रचारक ने कहा, 'क्या लाभ है पत्र लिखकर? हमने पत्र लिखे पर उत्तर भी नहीं आते।' श्री गुरुजी दुःखी हो गये। उनकी आँखों में जो व्यथा उभरी वह वर्णनातीत थी। उन्होंने व्यथा भरे स्वर-सार में कहा, 'अरे, तुम लोग घर से इतनी दूर-दूर जाकर संघ कार्य में जुटे हो, तुम्हारा कुशल जानने की मेरी इच्छा नहीं रहती है क्या? आये हुये प्रत्येक पत्र का उत्तर मैं आग्रह से देता हूँ, पर सतत् भ्रमण पर रहने के कारण कभी-कभी उत्तर में देरी होती है, यह मैं मानता हूँ। आप लोगों का पत्र आने से मुझे कितना आनंद होता है। 'आप कुशल हैं यह जानने पर मेरी चिंता का बोझ कम होता है, आपके पत्र आने से मैं निश्चिंत होता हूँ।' यह सुनकर मुझे परमपुरुष रामकृष्ण ने बताया चील और उसके घोंसले का उदाहरण याद आया। जिसमें श्री रामकृष्ण परमहंस बतलाते हैं कि चील कितना भी ऊपर आकाश में दूर चली जाती है किन्तु उसकी दृष्टि और ध्यान निरंतर घोंसले में बैठे अपने बच्चों पर ही केन्द्रित रहते हैं।

संभवतः १९६८ की बात है। उस समय मा. रामसिंह ठाकुर प्रांत प्रचारक थे तथा शिलांग तत्कालीन असम प्रांत की राजधानी थी। परंतु वहाँ असम से अलग होकर खासी, जयंतिया वनवासियों का अलग राज्य चाहिए यह माँग जोर से उठ रही थी। उसके पीछे ईसाई मिशनरीज थे और वनवासी-गैर वनवासी (Tribal-Nontribal) इस प्रकार के झगड़े भी शुरू हुये थे। सायं-रात के अंधेरे में गैर वनवासियों के साथ मारपीट की घटनाएँ आम थीं। संयोग से शिलांग का काम हिंदी भाषी और बंगला भाषियों में ही था। वातावरण में तनाव बहुत था। उस समय श्री गुरुजी का कार्यक्रम आया। कार्यक्रम के बाद गुवाहाटी में प्रचारकों की बैठक हुई। उसमें मा० रामसिंहजी ने परिस्थिति का वर्णन करते हुए काम में आने वाली बाधाओं का उल्लेख किया। श्री गुरुजी ने कहा- 'मिशनरी, ईसाई हुये वनवासियों के माध्यम से हर-एक प्रश्न को Tribal - nontribal दृष्टि से प्रचार करते हैं। उसके फलस्वरूप जो वनवासी ईसाई नहीं हैं, ऐसे वनवासी भी या तो उनका साथ देते हैं या मौन रहते हैं। अपने सारे सूत्रों से यह बदलकर प्रत्येक प्रश्न को Christian vs non Christian ऐसे focus करना चाहिए। तब ईसाई न हुये वनवासी बंधु अपने साथ आयेंगे। इसके लिये उन हिंदू वनवासियों में अपना संपर्क घर तक बढ़ाना, उनमें शाखाएँ चलाना, उनकी छोटी-मोटी समस्याओं का सहानुभूति-पूर्वक विचार कर उसे सुलझाने में सहायता करना, यह आवश्यक है। इस प्रकार के प्रयास करेंगे तो निश्चित् यह अलगाव दूर होकर हिंदू-वनवासी समाज अपने निकट आयेगा। विश्व हिंदू परिषद के असम महासम्मेलन में ईसाई एवं अन्य सेंग-खासी कहलाने वाले वनवासियों के नेतागण श्री एण्डरसन माओरी तथा श्री हिप्सन राय अपने निकट आये।' श्री गुरुजी के इस मार्गदर्शन के अनुसार स्वयंसेवकों ने संबंध बढ़ाये। फलस्वरूप एक खासी नेता ने प्रयाग विश्व हिंदू सम्मेलन में भाग लेकर लौटने पर एक जनसभा में कहा- 'In christianity we lost our indegenous faith, culture and everything. In Hinduism we received more than motherly treatment'.

नागरिकों के चायपान के समय प्रश्नोत्तर

उपस्थित एक पत्रकार ने पूछा अब भारत का विभाजन हो चुका है, अब क्या वह फिर से अखंड बनेगा?

श्री गुरुजी ने कहा– 'अपने देश में सब बड़े-बड़े नेता कह रहे हैं कि अब सारा विश्व एक हो रहा है। यदि यह सत्य है तो भारत निश्चित् ही अखंड होगा।'

श्री शुकदेव गोस्वामी जी से वार्तालाप

१९५४ में नौगाँव में श्री गुरुजी, श्री शुकदेव गोस्वामी जी के घर ठहरे थे। श्री गोस्वामी जी २४ वर्ष इंग्लैंड में रहकर ६ मास पूर्व वापस आये थे। बातों-बातों में श्री गोस्वामी जी ने पूछा गुरुजी, 'Don't you think that our country needs revolution and not organisation?'

श्री गुरुजी ने साथ-साथ उत्तर दिया– 'Mr. Goswami, revolution comes through either ballot or bullet. For both of them organisation is indispensible.'

जनसंपर्क महत्त्व का

१९५६ में श्री गुरुजी के इक्कावनवे जन्म-दिवस पर जो स्वागत समारोह हुआ, उस दिन रात को कार्यकर्ता बैठक में एक स्वयंसेवक श्रद्धानिधि के बारे में कहने लगा तो उसे रोककर श्री गुरुजी ने कहा– 'राशि की बात छोड़ो, मेरा उससे संबंध नहीं। मुझे बताओ इस निमित्त कितने नये अधिक ग्रामों में जाकर आप लोगों ने जनसंपर्क किया है, मेरे दृष्टि से वही महत्त्व की बात है।'

(श्री गुरुजी समग्र : खंड ९– पृ. २६४)

चातुर्वर्ण्य

१९५७ की बात है, श्री गुरुजी कामपुर में श्री हेम बरुवा जी के घर ठहरे थे। उन्हें मिलने नौगाँव के ख्यातनाम वकील श्री राधिका मोहन गोस्वामी आये। श्री गोस्वामी उसी वर्ष नौगाँव नगर संघचालक बने थे। श्री हेम बरुवा के घर श्री गुरुजी और अन्य कार्यकर्ताओं के साथ उन्होंने भोजन किया, पर यह भोजन करने की बात उनके मन में चुभती रही। वे एक नैष्ठिक रक्षणशील ब्राम्हण परिवार के थे। उन्होंने श्री गुरुजी से पूछा– 'क्या हिंदू धर्मशास्त्र के अनुसार मैंने गलती की है?'

श्री गुरुजी का उत्तर स्पष्ट था। उन्होंने कहा, 'देखिये! चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था एक काल में समाज रक्षण के लिये प्रयोजनीय थी, इसलिये वह निर्माण हुई। पर कालक्रम में उसमें विकृति आकर आज वह व्यवस्था न रहकर भेद बन गई है। इस अवस्था में उसके प्रकृत अर्थ की उपलब्धि किये बिना केवल परंपरा से आयी है, इसलिये पालन करना उचित नहीं होगा। जैसे कुम्हार मिट्टी का घड़ा बनाने के लिये मिट्टी को अच्छी प्रकार पीस कर, पीट कर पहले एकजीव करता है और फिर घड़ा बनाता है। कच्चे घड़े को आग में डालकर अच्छी प्रकार तपाता है तब घड़ा बनता है। कभी-कभी आवे (भट्टी) में डालकर पकाते समय घड़ा टूट जाता है। आधे पके टूटे घड़े को जोड़ नहीं लगाया जाता। अतः कुम्हार उसे फिर पीट-पीट कर एकजीव, एकरस मिट्टी बनाता है और फिर चक्के पर चढ़ाकर घड़ा बनाने लगता है। वैसे ही किसी जमाने में वर्णव्यवस्था ने समाज का रक्षण किया था पर आज वह टूट चुकी है। अब इसे जोड़-जोड़ कर ठीक करना संभव नहीं। इसीलिये संघ विभिन्न वर्ण एवं उपजातियों में बँटे हिंदू समाज के अन्दर हम सब एक हैं, एक भारतमाता के पुत्र हिंदू हैं, सब समान हैं कोई ऊँचा नहीं, यह भाव उत्पन्न कर एकरस, एकजीव हिंदू समाज बनाने के काम में लगा है। यह एकरस, एकजीव हिंदू समाज निर्माण कर पाये तो हमने इस जीवन में सफलता पायी ऐसा कह सकेंगे। इस एकरस, एकजीव समाज में पुनः उपयुक्त व्यवस्था निर्माण करने का भार भविष्य में होने वाले समाज के दार्शनिक और नेताओं पर रहेगा। यह भी स्पष्ट है कि व्यवस्था के बिना कोई समाज न जी सकता है, न प्रगति कर सकता है। विश्व के सारे मानव समाज को एक दिन यह व्यवस्था अपनानी पड़ेगी। अन्यथा विश्व का विनाश हो जायेगा।'

ऐसी शास्त्र-शुद्ध रचना वाले समाज का पतन क्यों हुआ, पूछने पर श्री गुरुजी ने कहा- 'इस रचना में समाज का नेतृत्व करने वाला ब्राह्मण वर्ग कर्तव्यच्युत हो गया, भ्रष्ट हो गया तो उसका अनुकरण करने वाला सारा समाज भ्रष्ट होकर आज की यह स्थिति आयी। आज भारत में कोई ब्राह्मण नहीं है। अतः ब्राह्मण होने का मिथ्या अहंकार निरर्थक है।'

श्री गुरुजी कहीं भी रहे तो असम की समस्याएँ और कार्यकर्ताओं की चिंता उनके मन में सदैव रहती थी। इसी कारण १५ अगस्त, १९५०, में बहुत बड़ा भूमिकंप होने पर श्री गुरुजी सितंबर में भूकंप हुये स्थानों पर गये। वहाँ लोगों से मिलकर ढाढ़स बँधाया। एक भूचाल पीड़ित ग्राम में श्री गुरुजी नदी पर बनाये, बाँस के पुल से गये। वहाँ से लौटने के दस मिनिट बाद ही वह पुल नदी के विकराल प्रवाह में बह गया।

श्री गुरूजी, श्री कामाख्या राम बरुवाजी के घर अन्य महानुभावों के साथ भोजन कर रहे थे, उतने में भूमिकंप का एक झटका आया। श्री बरुवा जी और अन्य हड़बड़ी से भोजन पर से उठ नीचे जाने की तैयारी में थे कि श्री गुरुजी ने बरुवा जी का हाथ पकड़ कर बैठाते हुए कहा- 'बरुवा जी जिंदगी में मरना तो एक ही बार है। इस तरह बार-बार मृत्यु से डरकर क्या होगा? वो जब आना है आयेगी। हम अपना भोजन छोड़कर क्यों जायें?' सभी की हँसी फूट उठी।

भूमिकंप असम में हुआ तो भी वह केवल असम की समस्या नहीं है, सारे देश के हिंदू समाज की समस्या है यह भाव जगाते हुये सारे देश भर से भूमिकंप पीड़ित सहायता समिति के लिये सहाय आया। उसके लिये श्री गुरुजी द्वारा वृत्त-पत्र में दिया पत्रक देश भर में वितरित हुआ।

(श्री गुरुजी समग्र : खंड-११, पृष्ठ २४३)

वनवासी और गोमांस भक्षण

१९७० के २७ मार्च से २९ मार्च तक जोरहाट में विश्व हिंदू परिषद की असम शाखा का द्वितीय महासम्मेलन हुआ था। श्री गुरुजी तीनों दिन अधिवेशन में थे। अधिवेशन के तीसरे दिन वहाँ उपस्थित १०७ वनवासी नेताओं को पूज्य शंकराचार्य जी के हाथों एक ॐका स्मृतिचिन्ह (Locket) देने की कल्पना आयी। पहले दिन तो पूज्य शंकराचार्य जी ने बात मान ली थी, पर हर समाज में कुछ तो समाजकंटक रहते ही हैं जिन्हें कोई भी कार्य सुचारु रूप से चला हो तो उसमें रोड़े अटकाये बिना समाधान नहीं होता। ऐसे ही एक-दो हिंदी भाषी सज्जनों ने पूज्य शंकराचार्य से कहा- 'वे वनवासी तो गौ को खाते हैं। गोमांस भक्षी हिंदू कैसे हो सकता है? आप उनको स्मृति चिन्ह देकर सम्मान करेंगे? गोमांस भक्षी तो हिंदू नहीं हो सकता।' ऐसा कहकर पूज्य शंकरचार्य जी ने कार्यक्रम में जाना अस्वीकार किया।

बात श्री गुरुजी तक गई। वे पूज्य शंकराचार्य जी के पास गये और विनम्रता से कहा- 'सुना है आप ने कल के कार्यक्रम में आने को मना किया है?' इस पर पूज्य स्वामी जी ने कहा 'यदि वे गोमांस खाते हैं तो उनको हिंदू कैसे कहेंगे?' श्री गुरुजी ने कहा 'वे लोग गोमांस क्यों खाते हैं? क्या वे शौक से खाते हैं? उनको दूसरा कुछ खाने को मिलता नहीं। वे गरीब हैं- गोमांस, बकरे के या सुअर के मांस से सस्ता रहता है, इसलिये वे अपने गुजारे के लिये खाते हैं। उनको अन्य अच्छा खाना मिले इसके लिये हम लोगों ने कुछ किया नहीं। सैकड़ों वर्ष तक उनके वन में कोई गया तक नहीं, कोई शिक्षा नहीं दी, कोई उद्योग नहीं दिये। यह हमारा पाप है। क्या हमारे पाप की सजा उनको देंगे?'

श्री गुरुजी ने हिन्दू समाज को उसका दायित्व-बोध जगाते हुए कहा- 'वे लोग गोमांस खाते हैं, वह उनका पाप नहीं, हमारा पाप है, उस पाप के भागीदार हम हैं। अनुकूलता होते हुये भी हम उनको

शिक्षा-दीक्षा देने के लिये उनके पास गये नहीं, उन्हें समाज के अच्छे घटक बनाने के लिये किसी ने प्रयत्न किया नहीं। क्या किसी ने उनको बताया है कि यह गौ- वंदनीय है? क्या किसी ने उनको बताया है कि वे हिंदू हैं? क्या उनके अन्तःकरण में यह प्रेरणा जगायी?'

श्री गुरुजी ने आगे कहा- 'उधर स्थिति यह है कि उनके घर में गाय जैसा दिखने वाला जो प्राणी है (मिथुन) वह दूध नहीं देता और जंगल में घूमता रहता है। उससे उन्हें केवल गोबर प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में यदि वह उस प्राणी को खाता है तो उसे दंड नहीं देना चाहिए। दंड के भागीदार तो हम हैं। हम इस दंड को स्वीकार करें और निश्चय करें कि अब हम निजी स्वार्थ को मर्यादित रखकर अपने पास की बुद्धि, शक्ति व धन इन सब लोगों को सुशिक्षित- सुसंस्कारित करने के लिये खर्च करें, अन्यथा विदेशी ताकतें इन सब पहाड़ी वंशों का गलत उपयोग कर वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करेंगी। हमसे उन्हें अलग तोड़कर इस राष्ट्रजीवन को संकट में डालने का उनका षड्यंत्र चल ही रहा है।'

(श्री गुरुजी समग्र : खण्ड ५: पृ. १२२-२३)

पूजनीय शंकराचार्य ने श्री गुरुजी की बात को गंभीरता से सुना और इस विषय पर अपनी सहमति प्रकट की। अगले दिन सभी जनजाति के बन्धुओं को पूज्य शंकराचार्य ने स्वयं अपने हाथ से ऊँ के लाकेट पहनाए। इस प्रकार एक कठिन समस्या का समाधान निकल गया।

पार्लिकाड के स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी के साथ भी गो-वध बंदी के प्रश्न पर चर्चा करते समय श्री गुरुजी ने गोमांस खाने वालों की बात पर अपने विचार कुछ इस प्रकार प्रकट किये-

श्री गुरुजी- 'कुछ प्रदेशों में लोग परंपरा से गोमांस खाते हैं। ऐसी स्थिति में क्या किया जाए, यह मैं सोच रहा हूँ। ऐसी समस्या असम में उत्पन्न हुई है। मुझसे कहा गया कि कुछ वनवासी जातियाँ गोमांस-भक्षण की अभ्यस्त हैं। बातचीत करने पर मुझे लगा कि यह दोष उनका नहीं है। उन्हें सुसंस्कारित करने का कार्य सदियों से हमने नहीं किया है। उनको हिन्दू कहा जाना चाहिए या नहीं इससे कुछ लोग सशंकित हैं। मैंने कहा कि वे गोमांस खाते हैं, और कुछ समय खाने दो, परन्तु वे हिन्दू ही हैं। हमारी सांस्कृतिक शिक्षा ग्रहण करने पर वे स्वयं ही गोमांस-भक्षण छोड़ देंगे। उसी दिशा में हम उनको सुशिक्षित और सुसंस्कारित करें।'

(श्री गुरुजी समग्र : खण्ड ६: पृ. २३४)

स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजीः 'उन्हें योग्य दिशा में शिक्षा-संस्कार देने का प्रयास हम करें, ऐसा आप चाहते हैं?'

श्री गुरुजीः 'पूर्वकाल में इसका प्रबंध था। असम में अनेक गोस्वामी इसी हेतु नियुक्त किये गये थे। वनवासी लोगों के नित्य संपर्क में रहकर उनको सुशिक्षित सुसंस्कारित करने का और उनके जीवन का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठाने का कार्य गोस्वामियों से अपेक्षित था। जिस काम का दायित्व उनके ऊपर था वह काम अब वे करते नहीं। असम के ये लोग श्री शंकरदेव-द्वारा निर्मित नववैष्णव संप्रदाय के हैं। श्रीमंत शंकरदेव, चैतन्य महाप्रभु के सम-सामयिक थे, यह तो सब भली-भाँति जानते हैं। असम में प्रवास करते समय मुझे अनेक गोस्वामी मिले। उनसे अपेक्षित काम वे आजकल करते नहीं हैं। उनको दान में मिली उपजाऊ जमीन के कृषि-उत्पादन के उपयोग में वे आनंद मनाते रहते हैं। कहते हैं कि इन वनवासी असंस्कृत लोगों के साथ हम कैसे मिल-जुल सकते हैं?'

'हमसे विचार-विमर्श हो जाने पर वे गोस्वामी जी हमसे सहमत हुए। कार्य की दिशा में पहले कदम के नाते सहभोजन के लिये उनका एकत्रीकरण हमने स्वीकार किया। वनवासी जनजातियों के नेताओं का एक सम्मेलन हुआ। इस प्रकार का कार्यक्रम वे स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे। एकत्रित आने पर भी सब साथ

मिलकर बातचीत करने में संकोच कर रहे थे। आपस में ही एकत्रित होकर वे वार्तालाप कर रहे थे। मैंने उनको कहा कि हम सब एक ही भारतमाता के पुत्र के नाते भाई हैं। बातचीत करते-करते मेरी दाँयी और बाँयीं ओर एक-एक इस प्रकार दो प्रमुखों के साथ मैं भोजन के लिये बैठ गया। वे आश्चर्यचकित हुए। ऐसे सहभोजन की कल्पना उनके लिये असंभव थी। कार्य की यह दिशा है। उनसे दूरी पर रहकर वे असंस्कृत हैं, अज्ञानी हैं, कहना उचित नहीं होगा। उनसे निकटवर्ती संबंध हमें स्थापित करना चाहिए।'

(श्री गुरुजी समग्र : खण्ड ६: पृ. २३४-३५)

मतान्तरण का खतरा और उस पर उपाय

एक बार श्री गुरुजी से पूछा गया कि असम के वनवासियों का बड़ी मात्रा में ईसाई मत में परिवर्तन किया जा रहा है, उसे कैसे रोका जाये?

श्री गुरुजी ने कहा- 'अपने को असम की गड़बड़ तो मालूम है ही। असम सब प्रकार के खतरे में पड़ा है। वहाँ पर अलग-अलग राज्य बनाने की योजना भी अपने शासन ने बनायी है। अब शासन चलाने वाले तो राजनीति के धुरंधर पुरुष हैं और मैं तो राजनीति जानता नहीं। परंतु मुझे लगता है कि उन्होंने अपनी राजनीति की चतुराई में जो कुछ काम किया है, वह असम प्रांत और उसके कारण समग्र भारत के लिये भयंकर संकट उत्पन्न करने वाला है। याने ईसाइयों के दबाव में आकर उस क्षेत्र को जहाँ पर ७० प्रतिशत ऐसे गैर-ईसाई लोग रहते हैं, जिनको हमारे शासक जनजातियाँ, पहाड़ी जातियाँ, गिरि जन इत्यादि नाम देकर हिंदू समाज से पृथक रखते हैं, को ईसाइयों के शिकार के रूप में उनके हाथ में छोड़ दिया है, जो कभी भी भारत के साथ सच्चाई से नहीं रहेंगे। नागा पहाड़ियों में चलने वाला विद्रोह तो आपको मालूम है ही। उसी प्रकार की पुनरावृत्ति सर्वदूर करके संपूर्ण असम मानो संकटग्रस्त कर देने की यह योजना हमारे बड़े नेताओं को सूझी, यह बड़े आश्चर्य और दुःख की बात है।'

संवादहीनता के दुष्परिणाम

'यहाँ पर जो ईसाई बने हैं, वे पहले वैष्णव थे। यहाँ पर एक महापुरुष श्री शंकरदेव हुये हैं। जिनके निर्वाण को २४ अगस्त १६६८, को ४०० वर्ष पूर्ण हुये हैं। उनकी स्मृति में अपने लोगों द्वारा कुछ कार्यक्रम करने का प्रयत्न किया गया। खास कर असम में, जहाँ पर उनका कुछ विशेष स्थान है। ऐसे हीतिनसुकिया नाम के नगर में बहुत बड़ा कार्यक्रम आयोजित हुआ। वहाँ पर श्री शंकरदेव महापुरुष द्वारा प्रस्थापित कुछ मठ हैं जिनको सत्र बोलते हैं। हरेक सत्र के प्रमुख को सत्राधिकार कहा जाता है। कुछ प्रमुख मठ ब्रह्मपुत्र नदी के माजुली नामक एक बड़े द्वीप में हैं, परंतु आश्चर्य की बात है कि एक ही द्वीप में रहने वाले ये मठाधीश गत दो तीन शताब्दियों में एक दूसरे से नहीं मिले। जब ये चारों प्रथम बार असम के विश्व हिंदू परिषद के सम्मेलन में मिले तब एक दूसरे से पूछा कि वे कौन हैं? द्वीप बड़ा है- यह बात सच है परंतु बहुत दूर तो जाना नहीं था। कुछ ही मीलों के अंदर है। अपने एक महापुरुष के अनुयायी के रूप में सब रहते हैं। पर किसने किसको मिलने के लिये जाना? पहले अपने घर से कौन जाये, फिर वह बड़ा होगा कि मैं बड़ा होऊँगा? पता नहीं कौन-कौन से विचार मन में आये होंगे, भगवान जाने, लेकिन वे गये नहीं।'

संपर्क का सुखद परिणाम

'ईश्वर की कुछ ऐसी कृपा हुई कि विश्व हिंदू परिषद के नाते जो काम हुआ, इसके कारण अपने प्रयाग के सम्मेलन में इनमें से एक प्रमुख सत्राधिकार आये। फिर उनकी सहायता से और उनकी प्रेरणा से सभी सत्राधिकार डेढ़-दो साल पश्चात् असम में आयोजित एक कार्यक्रम में आए। उस समय उन सबसे बातचीत हुई। उन्हें बताया गया कि ये सब गिरि क्षेत्रों में रहने वाले आप के अनुयायी हैं। जब उनसे यह पूछा गया

कि उनके पास आप में से कोई जाता है क्या? उनका मार्गदर्शन कौन करेगा? समय-समय पर उनको भगवान के नाम से भजन-पूजन करना कौन सिखाएगा? उनके अंतःकरण की, अपने समाज की, धर्म की श्रद्धा को कौन पक्का रखेगा? वे वंशपरंपरा से आपके सत्र के शिष्य हैं, उनका मार्गदर्शन करने का जो स्वाभाविक अधिकार है, उसको विस्मृत कर हम चलें, यह ठीक होगा क्या? तब सबने कहा कि यह बात हमारी ओर से ठीक नहीं हुई है और हम इस चीज को ठीक करेंगे। उन्होंने इस कार्य को शुरू भी किया है। कुछ लोगों को कार्य करने के लिये उन क्षेत्रों में भेजा। उसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने वहाँ पर भजन करने के लिये एक छोटा सा कमरा बना लिया। वहाँ पर आसपास के जो पुराने हिंदू वैष्णव हैं, उनको लेकर भजन कीर्तन आरंभ किया। श्रीमंत शंकरदेव महापुरुष के बने हुए जो भजन हैं, उनका गायन किया और भागवत का पाठ करने लगे।'

'उनको भजन करते हुये देखकर जो ईसाई बने हुये थे, उनकी भी इच्छा हुई और वे भी भजन करने के लिये वहाँ आकर बैठने लगे। भजन कराने वाला विश्व हिंदू परिषद का जो कार्यकर्ता था उसने पूछा कि भाई, तुम तो ईसाई हो, यहाँ कैसे आ गये? उन्होंने कहा हम काहे के ईसाई? हमको तो ऐसे ही जोर-जबरदस्ती से ईसाई बनाया गया था। हमको तो इस भजन में आनंद आता है। ईसाई बनने में वह आनंद नहीं आता। हमको अपने में ले लो। यह ईश्वर की अच्छी कृपा रही कि उनके हिंदू नाम थे, उनको भी हिंदू बना लिया।'

'अब हमारे वहाँ के सत्राधिकार भी इसको मानने लगे। इस प्रकार से यह जो आक्रमण आया है, इस आक्रमण से केवल अपनी रक्षा नहीं तो प्रत्याक्रमण करके, अपने से बिछुड़ा हुआ समाज है, उन सबको अपने अंदर समाविष्ट कर आक्रमणकारी की शक्ति आदि- निष्प्रभ, निर्बल और नष्ट कर देने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता के अनुसार ही कुछ कार्य करने का प्रयत्न चलता है।'

'इस संबंध में और एक बात मैं बोल रहा हूँ। कुछ दिन बाद जनगणना होने वाली है। हमें बहुत ही सतर्क रहना पड़ेगा। यह तो अनुभव की बात है कि जनगणना में झूठे आँकड़े देकर अपनी संख्या बढ़ाने का काम इस्लाम अनुयायियों ने किया है। बंगाल में कुछ वर्ष पहले (स्वतन्त्रता के पूर्व) हिंदू की तुलना में उनकी संख्या कम थी। दस वर्ष के बाद हुई गणना में वह अधिक हो गयी और हिंदू की कम। उस समय की राजनीतिक परिस्थिति में अपने नेताओं ने जनगणना का बहिष्कार करने को कहा इसलिये हिंदुओं ने नाम नहीं लिखाए, संख्या नहीं लिखाई। मुसलमानों ने चार आदमी की जगह चौदह आदमी लिखाकर संख्या बढ़ाई। यह संभव इसलिये हुआ कि भिन्न-भिन्न रंग के बुरके पहनने से पुरुष भी स्त्री का नाम लेकर दस-दस बार अपना नाम लिखा सकता है। नागपुर के एक जनगणना के समय मैं था। उस समय लोगों को सतर्क किया कि भाई देख लेना। तब वहाँ पर अच्छे दाढ़ी मूँछ वाले परंतु स्त्री का वेश लिये हुए स्त्री का नाम बताकर अपनी संख्या लिखवाते पकड़े गये। ऐसा हुआ है, फिर से हो सकता है। इसलिये सबको सतर्क रहना चाहिए।'

'दूसरी सतर्कता की बात है कि सब स्वयं को हिंदू लिखवाएँ। भिन्न-भिन्न पंथ अथवा पहाड़ी जातियों का नाम लेकर जनगणना में उपस्थित न हों। कोई खासी हो, कोई जयंतिया हो, कोई डफला हो, मिकिर हो, नागा हो, कोई भी हो, सब मिलकर अपने को हिंदू ही लिखाएँ। कोई किसी भी मत या पंथ का अनुयायी रहे, आखिर सब छोटे-बड़े पंथ जिस धर्ममार्ग के हैं, हम सबका वह मूल धर्म हिंदू ही है।'

'भारत का राष्ट्र-जीवन हिंदू जीवन है। इस सत्य का विस्मरण कर हम यदि छोटे-छोटे अल्पसंख्यक गुटों में विभाजित होते हैं तो मुसलमान और ईसाई समाज अल्पसंख्यकों की भीड़ में बड़ा गुट होंगे तथा बड़े गुटों के नाते अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र में आधिपत्य स्थापित करने की स्थिति में आयेंगे।'

'मैं तो इस नये बने मेघालय राज्य में अपने सब बंधुओं से प्रार्थना करूँगा कि जितने अपने पहाड़ी या वन्य क्षेत्र के रहने वाले बंधु हैं, वे सब हिंदू के नाते एकत्रित हों, अपना नेतृत्व खड़ा करें। अंग्रेजों के काल से हिंदू को हिंदुओं के विरोध में ही खड़ा करने का जो षड़यंत्र चल रहा है जिसके कारण अल्पसंख्यक होते हुये भी ईसाई वहाँ हावी हुये हैं, इस षड़यंत्र को चूर-चूर करके इस प्रदेश के सूत्र अपने हाथों में ग्रहण करें।'

(श्री गुरुजी समग्र : खंड ५: पृ. ८८, १०३-१०४, ११०)

नागा समस्या (वनवासी समस्या)

श्री गुरुजी १९५० में प्रथम बार असम में भ्रमण पर आये। उसी समय से उनके प्रतिपादन में भारत यह हिंदू राष्ट्र है, अखंड अविभाज्य माता है, यह विचार रहता था। राजनीतिक स्वार्थवश छोटे-छोटे प्रदेश करने से प्रादेशिकता-वाद बढ़ेगा, इस संबंध में वे सदैव सचेत थे। किंतु सरकारी नीति के कारण पूर्वांचल के सात टुकड़े हुए। फिर भी अपनी सांस्कृतिक एकता सदैव जागृत और जीवित रखने का काम संघ के माध्यम से वे करते थे। अब हम वर्तमान नागा समस्या के संदर्भ में श्री गुरुजी के विचार और सावधान वाणी का अध्ययन करेंगे। २ अक्टूबर १९६६ को गुवाहाटी में हुये विश्व हिंदु परिषद के सम्मेलन में श्री गुरुजी ने कहा था-

'वनों में तथा पहाड़ों पर रहने वाले अपने बंधुओं के पास अनेक शताब्दियों तक हम गये नहीं। संपूर्ण रूप से हम उनको भूल गये, एक प्रकार से उनके पिछड़ेपन को सहाय्य करते रहे। ब्रिटिश लोग हमारी समाज व्यवस्था को टुकड़े-टुकड़े करना चाहते थे। उन्होंने अपने भाई-बहनों को आदिवासी, वनवासी, पहाड़ी, आदि एक से एक विभक्तता सूचक नाम दिये। विदेशी शासकों द्वारा अलगाव की प्रवृत्ति का बीजारोपण करने के कुअभिप्राय को न समझ कर हम उनके जाल में फँस गये। अपने इस विशाल देश में कुछ लोगों को महानगरों में, कुछ लोगों को शहरों में, बहुसंख्यकों को गाँव में तथा कुछ को पहाड़ों में रहना पड़ेगा। किंतु ऐसा सब होने पर भी क्या हम एक नहीं हैं? सत्य यह है कि हम इन लोगों के पास कभी गए ही नहीं। हमने अपने इन भाई-बहनों को आधुनिक शिक्षा, संस्कृति एवं कला का परिचय तक नहीं कराया। इसलिये इनका पिछड़ापन स्वाभाविक ही है। किसी भी समाज में कुछ लोग प्रगति कर लेते हैं तो कुछ पिछड़े रहते हैं, कुछ दु:खी और कुछ सुखी होते हैं। कुछ लोग शिक्षा-दीक्षा के साधन प्राप्त न होने के कारण जीवन की सुख-सुविधाओं से वंचित रहकर दु:ख एवं दरिद्रता का जीवन बिताते हैं, किंतु इसके लिये जिम्मेवार हमारे पिछड़े भाई बहन नहीं, बल्कि हम स्वयं हैं।'

'देश में तथा विदेशों में ऐसे हिंदु हैं जो जीवन पद्धति से अनभिज्ञ होने के कारण पवित्र संस्कार एवं आचारों के बिना जीवन यापन कर रहे हैं। जन्म से मृत्युपर्यंत हमारे लिये कुछ संस्कारों की व्यवस्था की गई है। ये संस्कार हमारे जीवन के आदर्श एवं उद्देश्यों का पथनिर्देश करते हैं। जो इन संस्कारों से वंचित हैं, उन्हें अपनी जीवन पद्धति को अपनाने के लिये हमें आग्रह करना पड़ेगा। ऐसे लोग भारत से बहुत दूर विदेशों में रहने वाले ही नहीं, अपने ही इस देश में, जंगल, पहाड़ एवं कंदराओं में भी वास करते हैं। इन सबको आज की प्रचलित भाषा में निम्न, पिछड़े आदि अनेक नामों से अभिहित करना घोर अन्याय होगा। कुछ लेखकों ने लिख दिया कि नागा हिंदू नहीं हैं और हम भी वही बात कहने लगे कि वे वनवासी, गिरिवासी, भाई-बहन जड़ पदार्थों के उपासक हैं। ये लोग साँप, वृक्ष, पत्थर, नदी एवं बादलों की पूजा करते हैं। एक बार मैंने एक राजनीतिक नेता से प्रश्न किया- हिंदू नागाओं को किसी कमेटी, आयोग अथवा सरकार में क्यों नहीं लिया जाता? किसी समस्या पर विचार -विमर्श में उनको क्यों नहीं बुलाते, जबकि ईसाई धर्म में धर्मांतरित नागाओं से इनकी संख्या बहुत ज्यादा है? उन्होंने कहा, ये लोग केवल प्रकृति के

उपासक हैं, हिंदू नहीं हैं। वे कहना चाहते थे कि ये केवल जड़ पदार्थ, वृक्ष एवं पशु-पक्षियों की पूजा करते हैं इसलिये हिंदू नहीं हो सकते। मैंने उन्हें कहा मैं भी अन्य हिंदुओं की तरह वटवृक्ष एवं साँप की पूजा करता हूँ। तब क्या मैं हिंदू नहीं हूँ? सब हिंदू प्रकृति-पूजक हैं। अपने देश में साँप और पहाड़, वृक्ष और नदी की पूजा कौन नहीं करता? हम भगवान को सर्वव्यापी मानते हैं और सभी को भगवान के प्रतीक स्वरूप मानकर पूजा करते हैं। भगवान सुब्रह्मण्यम् के मंदिर में सर्प और मयूर, शिव के मंदिर में नंदी, राम के मंदिर में बंदर और भगवान विष्णु के मंदिर में गरुड़ आदि भगवान के प्रतीकों की हिंदू उपासना करते हैं। नागपंचमी सर्प पूजा का एक उत्सव है, जिसका हिंदू पंचांग के अनुसार सर्वत्र पालन किया जाता है।'

(श्री गुरुजी समग्र : खंड ५: पृ.५६-५७)

'कुछ वर्ष पूर्व पंडित नेहरू नागा-पर्वतीय क्षेत्रों में प्रवास पर गये थे। वहाँ कुछ लोग पृथक स्वतंत्र राज्य की माँग के लिये उन्हें सार्वजनिक सभा में एक स्मृति पत्र देना चाहते थे परंतु स्थानीय अधिकारियों ने इसकी अनुमति नहीं दी। विरोध स्वरूप ३००० नागा एक साथ उठ खड़े हुए और जैसे ही पंडित नेहरू भाषण देने वाले थे, वे सभा छोड़कर चले गये। पंडित नेहरू ने इसे निजी अपमान समझा और कहना आरंभ किया कि विदेशी मिशनरी इस देश में दूषित, राष्ट्रविरोधी षड़यंत्र रच रहे हैं। इसके पूर्व वे अब तक की उनकी मानव-सेवा की गतिविधियों की सब ओर प्रशंसा ही करते थे और जब कोई स्थानीय पादरी कार्डिनल बन जाता था, तो इसे वे अपने देश का बड़ा सम्मान हुआ- ऐसी घोषणा तक किया करते थे।'

(श्री गुरुजी समग्र : खंड ११: पृ.२४६)

'मध्यप्रदेश सरकार ने ईसाई धर्म प्रचारकों की गतिविधियों के संबंध में सूचना देने के लिए उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री नियोगी की अध्यक्षता में एक समिति गठन की थी। उन्होंने धर्मांतरित ईसाईयों, ईसाई धर्म प्रचारकों तथा अन्यान्य लोगों से भेंट कर १६५७ में एक लंबा प्रतिवेदन दिया, उसका सार इस प्रकार है- ईसाई धर्मप्रचारकों के सभी औदार्यपूर्ण कार्य उनकी धर्मांतरण की गतिविधियों को चलाने के लिये एक आवरण मात्र हैं। भोले-भाले लोगों को कभी त्रस्त करके और कभी प्रलोभन द्वारा आकर्षित कर वे अपना उपर्युक्त कार्य करते हैं। इन गतिविधियों के मूल में उनकी यह महत्त्वाकाँक्षा है कि उनकी संख्या की शक्ति व आधार पर अपने लिये एक अलग ईसाई राज्य बना लिया जाये, वे इसी एक उद्देश्य से करोड़ों रुपये व्यय कर रहे हैं।'

पादरिस्तान के लिये

'असम में नागालैंड की सृष्टि इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। नागालैंड में जो खुला विद्रोह चल रहा है, वह ईसाई प्रचारकों द्वारा ही संचालित है, इस तथ्य को पंडित नेहरू ने स्वीकार किया है, किंतु हमारी सरकार समय-समय पर देश को यह बताने में नहीं थकती कि वहाँ शांति स्थापित हो गयी है। चाहे दूसरे ही दिन वहाँ से समाचार क्यों न आए कि कोई ट्रेन लूट ली गई, कोई पुल उड़ा दिया गया अथवा हमारी फौज के कुछ जवान मार दिये गये। जब लोकसभा में यह प्रश्न किया गया कि विद्रोहियों के अधिकार में इतने बड़े परिमाण में शस्त्रास्त्र और गोला बारूद कैसे पहुँचे? तो उत्तर यह दिया गया कि गत द्वितीय विश्व युद्ध के समय जब जापानी भाग रहे थे, तब हथियारों का भार ढोने में असमर्थ होने के कारण उन्होंने उन्हें जंगलों में फेंक दिया था और नागाओं ने उन्हें अपने अधिकार में कर लिया। किंतु वृत्त-पत्रों में एक सूचना प्रकाशित हुई है कि अपनी सेना से एक संघर्ष में कुछ विद्रोही मारे गए और उनके हथियार ले लिये गये। वे हथियार नवीनतम थे और अमरीका के बने हुए थे। उन पर बनाने का वर्ष भी अंकित था। यह सन् १६५५-१६५६ के बने हुए अमरीकी हथियार बहुत पूर्व सन् १६४४ में किस प्रकार प्राप्त किये गए थे? यह सूचना मिली है कि नागाओं के अधिकार में नवीनतम मॉडेल की हवाई जहाजों को मारने की तोपें हैं। यह

भी स्पष्ट है कि वे हथियार किस प्रकार उनके अधिकार में आए होंगे। जो अमरीकी हथियार पाकिस्तान में आते हैं, वे असम में ईसाई धर्म प्रचारकों को हस्तांतरित कर दिये जाते हैं।'

'इस प्रकार विद्रोह चलता रहा है, फिर भी हमारे नेताओं ने आंशिक रूप से इनकी माँग को स्वीकार कर नागालैंड की स्थापना कर दी है। इसके विषय में यह अनिष्टसूचक लक्षण है कि यह सीधा विदेश मंत्रालय द्वारा प्रशासित है।'

'दबाव दो प्रकार के होते हैं। एक तो आंतरिक विद्रोह है, जो उनके द्वारा प्राप्त की गयी आंशिक सफलता के कारण अब भी चल रहा है और जिसका वेग बढ़ता जा रहा है। नागालैंड बनाने के हमारे निर्णय के पश्चात् भी हमारा एक हवाई जहाज गिरा दिया गया।'

'द्वितीय प्रकार का दबाव अंतर्राष्ट्रीय है। हमें ज्ञात है कि विद्रोही नागाओं का नेता फिजो पाकिस्तान तथा कुछ अन्य शक्तियों की सहायता से हमारे देश से गायब होकर इंग्लैंड चला गया है। उसे एक प्रसिद्ध ईसाई धर्म प्रचारक माइकेल स्काट ने आश्रय दिया, जिसने हमारे सम्मान को धक्का पहुँचाने वाले अनेक प्रकार के वक्तव्य देने के लिये उसे प्रोत्साहित किया। हमारे नेताओं ने संसार में शांति स्थापक होने के अपने सम्मान को दाँव पर लगाने से नागालैंड को दे डालना अधिक श्रेयस्कर समझा, क्योंकि वे अपने अंतर्राष्ट्रीय सम्मान के प्रति, वह कुछ भी क्यों न हो, अति कोमल हृदय हैं। अब उन्होंने उनको और अधिक स्वायत्त शासनाधिकार देने की दृष्टि से नागा विद्रोहियों के साथ शांतिवार्ता आरंभ की है तथा उस शांति नियोजन के एक सदस्य के रूप में उस सज्जन माइकेल स्काट को भी रखा है। हमारे नेता अपने को शांति-निर्माता प्रदर्शित करने के लिये देश-विभाजन को अत्यंत सस्ता पुण्य समझते हैं। अंतर्राष्ट्रीय दबाव बढ़ता ही जा रहा है। अतः आश्चर्य नहीं होगा कि निकट भविष्य में ही नागालैंड अलग हो जाए तथा ईसाई धर्मांधों के वर्चस्व तथा आधिपत्य वाला एक स्वतंत्र राज्य बन जाये।'

'आज नागालैंड के नागरिक एक पूर्ण राज्य की स्थिति प्राप्त कर अन्य राज्यों के समान अधिकार पाते हैं। नागालैंड ईसाई विश्वास को मानने वाला राज्य बना है। जगह-जगह पर नागालैंड फॉर क्राइस्ट के नारे चलते हैं। भित्तिपत्रक लगते हैं। सभी ईसाई पर्वों पर छुट्टी रहती है।'

(श्री गुरुजी समग्र : खंड ११: पृ. २०२-२०४)

पत्र द्वारा प्रेरणा

पत्र लेखन एक कला है। अपने से दूर रहे व्यक्तियों को अपने अंतरतम की भावनाएँ शब्दरूप में अवगत कराने का माध्यम होता है पत्र। इस पत्र से दूर से संपर्क करने का उपयोग श्री गुरुजी बखूबी से करते थे। यद्यपि प्रांत में उनका भ्रमण एक या दो बार ही वर्ष में होता था किंतु हर दो तीन मास के बाद उनका अपने हस्ताक्षर में पत्र आता था। सामान्यतः पत्र के प्रारंभ में कुशल कामना, बाद में अपने भ्रमण का उल्लेख, बढ़ते संघकार्य का विवरण आदि रहता था। फिर प्रांत की परिस्थिति में कैसी दृढ़ता से काम करना इसका मार्गदर्शन रहता था। असम के कार्यकर्ताओं को विविध प्रश्नों एवं विविध समय पर आये कुछ मार्गदर्शक पत्रों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

असम प्रदेश का कार्य, गांधीजी की हत्या पर लगा प्रतिबंध हटने के बाद फिर शुरू हुआ। किंतु उसको कुछ व्यवस्थित स्वरूप १९५० में महाराष्ट्र से कुछ प्रचारक आने के बाद धीरे-धीरे आया। प्रारंभ के प्रचारकों में धुबड़ी में श्री सुधाकर देशपांडे, नौगांव में श्री मधु लिमये, श्री माधव मेहेंदले, श्री अप्पा कुलकर्णी, श्री पद्माकर वझे और श्री विनायक लिमये थे। श्री सुधाकर देशपांडे और श्री मधुकर लिमये छोड़कर बाकी दो वर्ष में वापस चले गये। नये कार्यक्षेत्र में जाने पर काम कैसा आरंभ करना चाहिए इसका विवेचन करते हुये श्री गुरुजी ने श्री सुधाकर को लिखा है-

'कार्य में उत्साह निर्माण होने लगा है, यह पढ़कर अत्यंत आनंद हुआ। अपना मन आनंदित रहा तो वह उत्साह अपने संपर्क के अन्य बंधुओं के अंतःकरण में प्रवेश करता है तथा उसमें से कार्यवृद्धि होने लगती है, यह इस समय आपने अनुभव किया होगा ही। अब स्थानीय युवकों का सहयोग प्राप्त करें तथा उन्हें शाखा चलाने, कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से लेने, स्वयंसेवकों से बातचीत करने, स्वयं योग्य विचार करने आदि के विषय में मार्गदर्शन करें, तथा उन पर अधिक जिम्मेवारी सौंप कर उन्हें योग्य बनाने की ओर थोड़ा अधिक ध्यान दें। इससे नगर के अन्य लोगों से मिलने, बोलने, आसपास के स्थानों का निरीक्षण कर वहाँ शाखा खोलने का प्रयास करने के लिये आपको अवकाश और मनःस्वास्थ्य मिल सकेगा।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ८: पृ. ८०)

प्रचारक के नाते ६ वर्ष काम करने के बाद निराशा के भाव आना कभी-कभी हो जाता है। ऐसे एक कार्यकर्ता को श्री गुरुजी ने लिखा-

'आपके पत्र का आशय ध्यान में आया। कार्य करते रहते हुये ऐसा होता ही है। मनुष्य स्वभाव के अनुरूप अनेक दुर्बलताएँ रहती हैं एवं उनका कष्ट होता है। यह भी लगता है कि आदर्श बहुत ऊँचा होने से अनाकलनीय है। परंतु कार्य का निश्चय हो एवं एक ही छलाँग से आदर्श तक पहुँचने की अव्यवहार्य इच्छा न रखते हुये क्रमशः उत्क्रांत हो सकते हैं, यह ध्यान में रखकर उस दृष्टि से प्रयत्न चालू रखने का निश्चय दृढ़ हो, तो असंभव सा लगने वाला कार्य भी संभव होता है, परंतु बीच में ही निराश होकर निश्चय छोड़ देने से कुछ भी हाथ नहीं लगता। स्वकर्तव्य में मग्न रहकर, यशापयश श्री परमेश्वर पर सौंप कर, आलस छोड़कर प्रयत्नरत रहें।' (श्री गुरुजी समग्र ग्रन्थ ८: पृ. १७६)

असम प्रदेश में बढ़ती जा रही मुसलमानों की संख्या, अत्याचार और हिंदुओं की असहायता के बारे में एक कार्यकर्ता के आये पत्र के उत्तर में श्री गुरुजी लिखते हैं 'असम की चिंताजनक घटनाओं की जानकारी प्राप्त हुई। अंग्रेजों के समय जो नीति थी, वही उनके उत्तराधिकारी विरासत में प्राप्त अधिकार से चला रहे हैं। हिंदू समाज पर अहिंदुओं द्वारा विशेषतः मुसलमानों द्वारा घातक हमले किये जायें एवं हिंदु समाज के अच्छे-अच्छे व्यक्तियों को पकड़कर उन्हें सजा देने का काम शासन कर रहा है। इस नीति के सामने न्याय-देवता क्या कर सकता है? इसलिये जब तक यह वातावरण बदल कर संपूर्ण देशभर में शुद्ध दृष्टि से राष्ट्र एवं उसके सब प्रश्नों की ओर देखने का गुण पैदा नहीं होता है, तब तक यही अपेक्षित मानकर अपने कार्य का अनन्य-साधारण-महत्त्व लोगों के ध्यान में ला देने का, उसमें से कार्य की व्याप्ति और दृढ़ता बढ़ाने, फलस्वरूप वातावरण में परिवर्तन लाने का जी जान से प्रयत्न करना एवं अपने सहयोगी स्वयंसेवकों को अधिक उद्यमशीलता से प्रयत्न करने को प्रोत्साहन देना- यही अनिवार्य है, यह समझकर काम में नित्य नया जोश निर्माण करने के लिये परिश्रम करें। अपने कार्य की सफलता के बिना देश का विग्रह रूपी विष नष्ट कर सुदृढ़, सुसंगठित, एकात्मता रूपी अमृत राष्ट्र-जीवन में डालने का पुण्य कार्य अन्य किसी चाह से नहीं हो सकेगा, होगा भी नहीं। इस सत्य, वस्तुस्थितिनिष्ठ विश्वास से प्रयत्न किये जायें।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ८: पृ.१७७)

इसी समय नवम् श्रेणी के एक मुख्य शिक्षक ने लिखे पत्र के उत्तर में श्री गुरुजी ने लिखा–

'असम प्रांत की स्थिति का पता लगा है। अभी तक उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उचित उपाय-योजना करने की बुद्धि शासनकर्ताओं में उत्पन्न नहीं हुई, यह दुर्भाग्य कह कर रोने से काम नहीं बनता। अंतःकरण पूर्वक प्रयास करना आवश्यक है। अपने कार्य के द्वारा जो एकात्म-बोध तथा स्नेहसंपन्न व्यवहार निर्माण करने का प्रयास चल रहा है, वही इस दुरावस्था को दूर करने का उपाय है। अतः व्यक्ति-व्यक्ति को समझा कर अपने कार्य में लाना, अपने सद्व्यवहार की, निःस्वार्थ राष्ट्रभाव की, अखिल भारत के एकत्व की शिक्षा देना, अनुशासन के पवित्र सूत्र में सबको आबद्ध करना तथा इस हेतु अपार परिश्रम करते रहना आवश्यक है। अब वायुमंडल कुछ शांत हुआ है, इसमें विशेष उद्योग से अधिक शांति और सद्भाव प्रस्थापित कर कार्य के लिये अनुकूलता निर्माण करने का निरंतर प्रयास हो।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ८. पृ. १६६)

प्रदेश की स्थिति गंभीर होती गयी। मुसलमानों की कूटनीति से असमिया और बंगाली हिंदुओं में मनोमालिन्य तथा वैमनस्य बढ़कर उसका हिंसा और आगजनी में प्रस्फोट हुआ। उस स्थिति में लिखे एक स्वयंसेवक के पत्र के उत्तर में श्री गुरुजी ने मार्गदर्शन किया –

'अपने कार्य की आवश्यकता को ध्यान में लें। जिन के मन दुःख से डूब गये हैं वे स्वयं इस ढंग से सोचें– हम आपस में लड़ते-झगड़ते रहे, और विदेशियों की बाहुओं में भरते रहे– परिणामतः गत सहस्र वर्ष, उत्तरोत्तर हमारा अधःपतन तथा सर्वनाश होता रहा। फिर भी उसी आपसी कलह में हम आज भी मग्न हैं। आज भी हम शत्रु को प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रीति से सहायभूत हो रहे हैं। इस ढंग से आत्मघात करते रहना निंद्य है। इस दुष्ट मनोवृत्ति का हमें सर्वथैव त्याग करना होगा तथा समाज, स्वसंस्कृति एवं स्वराष्ट्र का सम्यक् ज्ञान धारण करना होगा। किसी भी प्रकार के विपरीत प्रचार अथवा प्रलोभन का शिकार न बनने की दृढ़ता हमें धारण करनी होगी। हमारे गत जीवन का लुप्त सुख-वैभव हम पुनरपि प्राप्त करेंगे, सब प्रकार के शत्रुओं के सब हथकंडे विफल करेंगे ऐसा सुविचार अंतःकरण में स्थिर रूप से अंकित कर जीवन का पूरा ढाँचा ही बदलना श्रेयस्कर है और यह अति इष्ट तथा विशुद्ध राष्ट्रजीवन हेतु परिपोषक एवं तारणहार परिवर्तन हमारे कार्य से ही हो सकेगा। अतः छोटे बड़े प्रत्येक स्वयंसेवक को चाहिए कि वह अब पुराना दुखड़ा रोने में समय न गँवाये और कार्य के हेतु कमर कसकर आगे बढ़े। स्वयं आपने वहाँ उपस्थित प्रत्यक्ष साक्षी परिस्थिति का आकलन अति संतुलित ढंग से परंतु अति सुहृदयता से किया है। अतः स्वयंसेवकों को अधिकाधिक कार्य प्रवण बनाने तथा जनसाधारण में सद्विचार बोने के लिये सर्वथा पात्र होने के कारण आपका दायित्व और भी बढ़ा है। कार्य शीघ्रता से बढ़ना चाहिए। साथ ही उसमें चिरकालिक दृढ़ता भी आनी चाहिए। तब फिर ऐसी दुर्दशा निर्माण होगी ही नहीं। ऐसी शक्ति निर्माण कर जनमानस पर हम चिर प्रभाव प्रस्थापित करेंगे, बस यही धुन सब बंधुओं को लगा दें। जिन स्वयंसेवक बंधुओं की हानि हुई है, उन्हें पूर्ण नहीं तो आंशिक रूप में आपने कुछ न कुछ सहाय्य दिया ही होगा और दे ही रहे होंगे।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ८: पृ. १८५)

१६६० के उस उग्र भाषिक संघर्षों में असम में अनेक लोग मारे गये और आगजनी की घटनाओं में लोगों के घर जलाये गये। शिलांग के संघचालक श्री राजकुमार भट्टाचार्य के भाई की हत्या कर सम्पत्ति चोरी गई। मा० भट्टाचार्य को लिखे सांत्वना पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा– 'असम में उन्मत्तता का जो नग्न नृत्य चल रहा है, उसके आप एक दुर्दैवी दुःखभोगी हैं। आपकी तथा आपके दुःखाक्रांत परिवार की सांत्वना कैसे करूँ, यह समझ में नहीं आता। आपकी भावनाओं को सौम्य करना तथा दुःख शमन करना केवल काल एवं

जगज्जननि के हाथों में है। हम अब उस जगदंबा की प्रार्थना करें कि वह हमें शुद्ध तथा निस्वार्थ ज्ञान प्रदान करे।'

'इस दुःखमय अवस्था में सर्वप्रकार की शक्ति, शांति एवं शुद्धता के मूल-स्रोत ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको धैर्य दे और सब बातों का समुचित मूल्यमापन कर अपने नित्य व्यावहारिक कर्तव्य आप संतोषपूर्ण तत्परता से पूर्ण कर सकें।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ८: पृ. २०४)

कार्य करते समय कई बार निराशा में आकर प्रचारक वापस लौटता है। कई बार अपने सहकारी कार्यकर्ताओं के व्यवहार या बातों से रुष्ट होकर घर जाना चाहता है। फिर कई बार सोचकर खुद को सँभालकर कार्य में लगा रहता है। ऐसे एक प्रांत के ज्येष्ठ कार्यकर्ता को श्री गुरुजी का पत्र है-

'अपने मन की अवस्था आपने लिखी है। मैंने अनुमान से तथा आपसे होने वाली थोड़ी बहुत बातचीत से बहुत पहले ही उसका पता लगाया था। परंतु योग्य समय पर ही उस संबंध में बोलना पड़े तो आपसे कुछ कहने का विचार कर मैं स्वस्थ रहा। अब आपने स्वयं अपने विवेक से तथा दृढ़-इच्छा-शक्ति से अपने मन को पक्का कर लिया है। अतः मेरे लिये कहने को कुछ शेष नहीं है। किसी को कार्यनिवृत्त होते देखने से या किसी की अन्य कोई त्रुटि या अवस्था के कारण अपना मन विचलित क्यों होना चाहिए? तो भी होता है, यह अनुभव है। ऐसे समय प्रबल विवेक ही अपना सहारा होकर अपने को अपने ध्येय मार्ग पर बना रख सकता है। इसी शुद्ध विवेक की शक्ति से आपने योग्य निश्चय किया है, इसकी मुझे अतीव प्रसन्नता है।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ८: पृ. २२६)

असम भारत का एक सीमान्तवर्ती प्रदेश होने के कारण युद्ध विग्रहादि में शत्रु का पहला हमला उसे झेलना पड़ता है। अतः यहाँ के स्वयंसेवकों को विशेष रूप से सावधान करते हुए श्री गुरुजी ने १९६२ में भारत चीन युद्ध के समय स्वयंसेवकों से कुछ स्वाभाविक अपेक्षाओं का निर्देष करते हुए लिखा-

'गत कई वर्षों से पाकिस्तान, असम तथा बंगाल में अपने नागरिक घुसाकर सीमाओं पर भारी मात्रा में सिद्धता कर तथा कश्मीर व पंजाब में यावच्छक्य(यथासंभव) घुसने के लिये अनुकूल काल की वे मानो प्रतीक्षा कर रहे हैं। चीन को सीमा पार हटाने के बृहतप्रयास में भारत को उलझा देखकर शत्रु का संकट अपनी सुसंधि इस नीति पर चलने वाले पाकिस्तानी नेता आज की भारत की परिस्थिति को अत्यंत अनुकूल काल समझें तो आश्चर्य नहीं। भारतीय शासन को सतर्क रहकर ऐसी सिद्धता रखने तथा यथा संभव मित्रता का संबंध बनाये रखने का प्रयत्न करना पड़ेगा, ताकि उन्हें ऐसा साहस न हो सके। यह शासन का कर्तव्य है।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ३: पृ. ३२)

'सर्व सामान्य जनता को तथा अपने स्वयंसेवक बंधुओं को इससे संबंधित महत्त्व का काम करना है। देशभर में पाकिस्तानी मनोवृत्ति के अनगिनत लोग रहते हैं। कुछ वर्षों से उनके विचार, उनकी गतिविधियाँ, संदेहास्पद रही हैं। इनके द्वारा देशभर में या कुछ चुने हुये क्षेत्रों में उथल-पुथल मचाकर, दंगा-फसाद खड़ा कर, शांति-सुव्यवस्था नष्ट कर, आतंक एवं दहशत का वायुमंडल निर्माण करना तथा उसके द्वारा पाकिस्तान की आक्रमणकारी नीति का पृष्ठपोषण एवं सहायता होना, असंभव मानना बड़ी भूल होगी। विगत कुछ काल से कई प्रांतों में इन पाकिस्तानी तत्त्वों ने भारतीय कम्युनिस्टों से मेल किया है। अनेक प्रांतों में तो कम्युनिस्ट चोला पहन रखा है। इस परिस्थिति को समझ कर सूक्ष्म-दृष्टि से सब विस्फोटक केंद्रों का पता लगाकर, उनसे जनता को सावधान करना तथा स्थान-स्थान पर समाज की संगठित शक्ति से उनकी अनिष्ट गतिविधियाँ असंभव हों, ऐसा प्रभावी, जागृत वायुमंडल बनाकर रखना अत्यावश्यक है। आज की स्थिति में

अपने समाज के, राष्ट्र के, शासन की पीठ में कोई अकस्मात छुरा न घोंप सके इतनी दक्षता सबसे अपेक्षित है।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ३: पृ. ३२)

इस सावधान वाणी की सत्यता १९७१ के युद्ध में ध्यान आयी। उस समय के प्रांत प्रचारक श्री श्रीकांत जोशी को ३.१२.७१ के पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा है–

'कल सायंकाल प्रसृत समाचार के अनुसार कल और आज अगरतला पर आक्रमण हुआ है। आक्रमण का सिलसिला अन्यान्य क्षेत्र में बढ़ रहा है और प्रत्यक्ष युद्ध आरंभ होने जैसी स्थिति बनी है। कल या परसों युद्ध घोषित होता है तो आश्चर्य न हो। सद्य परिस्थिति में लोगों में एकता कायम रखने का, अपनी सेना के बारे में आदर एवं प्रेम भरे सहयोग की सद्भावना वृद्धिंगत करने का और प्रांत में शांति रखने का विचार प्रसृत करना अत्यंत आवश्यक है। मुझे लगता है कि हम अपने सभी परिचितों के माध्यम से, समाज के सभी अंग-प्रत्यंगों को इन विचारों से प्रभावित करने का उपक्रम जोर-शोर से आरंभ करें।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ८: पृ. ३८७)

कानपुर के एक कार्यकर्ता के प्रचारक निकलने पर उनको श्री गुरुजी द्वारा दिया पाथेय :–

'कार्य करते समय कुछ बातें ध्यान में रखना आवश्यक है। घर में पूज्य पिताजी को नियमित रूप से पत्र भेजना चाहिए। उन्हें और विशेषकर पूज्य माताजी को चिंता लगी रहती है। नियम से पत्र भेजकर अपना कुशल समाचार देते रहने से उनको संतोष होगा। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए। सूर्यनमस्कार, नियमित व्यायाम और खाने-पीने में अनियमितता का त्याग लाभ-जनक रहेगा। अपने क्षेत्र में सबसे अच्छे स्नेह के संबंध रखना चाहिए। आलस्यरहित होकर सबसे मिलना-जुलना, सहायता करना आदि उचित व्यवहार आवश्यक है। पुराने स्वयंसेवक बंधुओं का योग्य सम्मान कर उन्हें कार्य का दायित्व उठाने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। किसी पर रुष्ट होकर टीका-टिप्पणी न कर मधुर-वाणी से, मधुर-व्यवहार से सब को कार्यप्रवण करना पड़ता है। नए-नए लोगों से मिलकर उनके हृदय में अपने देश, धर्म, संस्कृति, समाज, राष्ट्र के विषय में प्रेम, श्रद्धा एवं कर्तव्यभावना जगाकर वे संघ के स्वयंसेवक बनेंगे, ऐसा निरंतर प्रयास करने से और प्रतिदिन की उपस्थिति, नियमितता, कार्यक्रमों का अभ्यास करा लेने से शाखा के रूप में चलने वाला अपना कार्य सुचारु रूप से चल सकेगा और चारों ओर अच्छा वायुमंडल बन सकेगा।'

'इन सब उद्योगों में जो समय रिक्त रहेगा, उसका उपयोग सद्ग्रंथ पठन में, अपने ध्येय के चिंतन में हो, इससे अपनी बौद्धिक योग्यता बढ़ेगी, सत्संस्कार प्रबल होंगे और लोगों के अंतःकरण में अपने लिये श्रद्धा तथा आदर बढ़ेगा। कार्य के लिए यह बहुत उपकारक है। संक्षेप में उत्तम प्रयत्न कर आप यश प्राप्त करें।'

(श्री गुरुजी समग्र : ग्रन्थ ८: पृ. ३५१)

बाधाओं की परवाह नहीं

कोयले की मालगाड़ी में भी यात्रा

सन् १९६० के दिनों में असम के अन्दर विदेशी षड़यंत्र के कारण फैलाए गए भाषायी विवाद ने भीषण रूप धारण कर लिया और इस कारण असमिया तथा बाँगला-भाषी बन्धुओं के मध्य द्वेष निर्माण हुआ था।

ऐसे समय में श्री गुरुजी का असम में भ्रमण चल रहा था। अगरतला का कार्यक्रम कर वे शिलचर पहुँचे और ट्रेन से लामडिंग तक तो आ गए, किन्तु आगे कोई ट्रेन नहीं थी। नगाँव में कार्यक्रम था, स्वयंसेवकों के साथ सैकड़ों लोग भी श्री गुरुजी को सुनने आए थे। उसी समय कोयले से भरी एक मालगाड़ी आ गई। श्री गुरुजी ने कोयले की मालगाड़ी में बैठकर जाने का निर्णय किया। श्री आबाजी, श्री रामसिंहजी तो कोयला भरे डिब्बों में कोयले के ऊपर बैठ गये। श्री गुरुजी को ड्राइवर ने अपने पास बैठने की अनुमति दे दी और श्री गुरुजी इंजन रूम में बैठकर होजाई आए। होजाई से कार द्वारा नगाँव में सीधे कार्यक्रम स्थल पर पहुँचे किन्तु उस समय ध्वजावतरण हो रहा था। श्री गुरुजी दौड़ते हुए मंच पर पहुँचे, वामवृत् की आज्ञा हुई, सभी ने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया और श्री गुरुजी का अत्यन्त प्रेरणादायी, समसामयिक उद्‌बोधन हुआ जिसमें उन्होंने कहा कि- 'हम सभी भारतमाता की सन्तान हैं। किसी भी प्रकार के भाषायी विद्वेष की कल्पना भी करना पाप है। सभी भाषा-भाषी हिन्दुओं को मिलकर रहना, संगठित होना ही आज की आवश्यकता है।' उस समय असम की उन कठिन परिस्थितियों में उनके मार्गदशन का दूरगामी योग्य परिणाम हुआ।

जंगल की ठण्डभरी रात और 5 कि0मी0 की पैदल यात्रा

सन् १९६४ का श्री गुरुजी का प्रवास कई अर्थों में स्मरणीय रहा। ८ जनवरी को धुबड़ी में दिनभर के कार्यक्रम कर श्री गुरुजी, श्री आबाजी तथा श्री रामसिंहजी फकीरा ग्राम के लिए मोटरकार से निकले। वहाँ से रेलगाड़ी पकड़कर गुवाहाटी जाना था। अभी स्टेशन ५ कि०मी० दूर था कि कार में पैट्रोल समाप्त हो गया। कड़ाके की सर्दी, ठण्डी हवा, रात्रि का अन्धकार और जंगल की सुनसान सड़क। श्री गुरुजी ने पैदल चलने का निर्णय किया और तेज गति से वे चल पड़े। सभी ने उनका अनुसरण किया और रात्रि का अन्धकार चीरते श्री गुरुजी समय पर स्टेशन आ पहुँचे। रेलगाड़ी मिल गई और आगे का प्रवास जारी रहा।

ब्रह्मपुत्र का प्रचण्ड प्रवाह, अन्धेरा और वह छोटी नाव

उपर्युक्त प्रवास क्रम में गुवाहाटी का कार्यक्रम समाप्त करके विमान से तेजपुर जाना था किन्तु विमान आया ही नहीं। श्री गुरुजी मोटर कार द्वारा तेजपुर पहुँचे, कार्यक्रम हुआ और अब तिनसुकिया जाना था किन्तु फिर विमान स्थगित हो गया। ब्रह्मपुत्र पार करने के लिए बड़ा स्टीमर भी नहीं था। अब ब्रह्मपुत्र का प्रबल प्रवाह पार करने के लिए एक छोटी सी नौका दिखलाई पड़ी। सभी असमंजस में पड़े थे कि क्या किया जाए? डरते-डरते उस छोटी नाव का नाविक तैयार हुआ। विशाल ब्रह्मपुत्र का वेग देखकर सभी को भय लगने लगा। किसी भी क्षण अनहोनी की संभावना ध्यान में आने लगी, किन्तु श्री गुरुजी ने प्रभु का स्मरण किया और कहा चलो इसी नौका से चलेंगे और देखते-देखते वह नन्ही सी नौका ब्रह्मपुत्र को पार करते हुए बढ़ चली। घनघोर अन्धेरा, अशान्त प्रवाह किन्तु नौका में बैठा शान्त योगी- सभी की हिम्मत बँधाने को पर्याप्त था। श्री आबाजी, श्री रामसिंहजी एवं कुछ स्वयंसेवकों को लेकर नाविक अपनी नाव को लेकर सिलघाट पर पहुँच ही गया, तब सभी की जान में जान आई। श्री गुरुजी की संध्या का समय हो चुका था, किन्तु ब्रह्मपुत्र के किनारे कोई स्थान नहीं मिल पा रहा था। जिस नाव से श्री गुरुजी अभी आए थे उसका नाविक मुसलमान था किन्तु श्री गुरुजी के आत्मीय व्यवहार से वह बहुत प्रभावित था। उसने श्री गुरुजी की संध्या हेतु अपनी झोंपड़ी में आने का निवेदन किया और श्री गुरुजी सहर्ष उस मुसलमान नाविक की झोंपड़ी में ईश्वर-आराधना में लीन हो गए, उस परमात्मा की कृपा से ही तो सब सुयोग मिलता रहा था।

◆◆◆